Shodh Prabha: A Multidisciplinary Journal
ISSN: 3108-2726 (Online), 3108-2890 (Print), Volume-2, Issue-1, (Jan - Feb) 2026

अवध के ऐतिहासिक परिदृश्य में भर समुदाय की भूमिका: लखनऊ व निकटवर्ती क्षेत्रों का एक ऐतिहासिक अन्वेषण (9वीं से 14वीं सदी तक)

आशीष कुमार
शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ० प्र०
Email: ammihlu2022@gmail.com

शोध सार:

अवध क्षेत्र, विशेषकर लखनऊ और उसके सीमावर्ती जिलों का 9वीं से 14वीं शताब्दी का इतिहास मुख्य रूप से भर राजभर जाति के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व का काल रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र लखनऊ, रायबरेली, बाराबंकी और सम्पूर्ण अवध क्षेत्र में भर जनजाति के ऐतिहासिक विकास, उनके राजनीतिक पतन और उनके पुरातात्विक अवशेषों किलों, टीलों और कोटों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक दस्तावेजों, औपनिवेशिक गजेटियरों और पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भर केवल एक वनवासी जनजाति नहीं थे, बल्कि उन्होंने एक सुदृढ़ विकेन्द्रीकृत राज्य प्रणाली की स्थापना की थी। यद्यपि लखनऊ के दक्षिण-पूर्वी भागों और शेष अवध में भरों का व्यापक प्रभाव था, किन्तु लखनऊ के कुछ हिस्सों में पुराने टीलों और किलों को पासी या अरख जातियों से भी जोड़ा जाता है, जो स्वयं को भरों के ही समतुल्य या उनके ही वंशज मानते हैं। इसी प्रकार, रायबरेली और अन्य क्षेत्रों में अहीर और पासी जातियों की लोककथाएं उन्हें भरों का वंशज बताती हैं। 11वीं शताब्दी में तुर्क आक्रमणों विशेषकर सैयद सालार मसूद से लेकर 13वीं-14वीं शताब्दी में बैस और कान्हपुरिया राजपूतों के उदय तक, भरों ने बाहरी शक्तियों का कड़ा प्रतिरोध किया। अंततः 14वीं शताब्दी तक राजपूतों के सैन्य विस्तार और दिल्ली सल्तनत के सुदृढ़ीकरण के कारण भरों की राजनीतिक सत्ता का पतन हो गया। यह शोध पत्र इसी ऐतिहासिक संक्रमण का समग्र मूल्यांकन करता है।

मुख्य शब्द: भर जाति, मार्शल रेस, अवध, टीले और कोट, भरडीह, लखनऊ,भरवारा,काकोरी, राजपूत, तुर्क ।

1. प्रस्तावना

उत्तर भारत के इतिहास में 9वीं से 14वीं शताब्दी का कालखंड राजनीतिक उथल-पुथल, सत्ता के हस्तांतरण और जनसांख्यिकीय परिवर्तनों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण युग माना जाता है। इस काल में अवध का क्षेत्र- जिसमें वर्तमान लखनऊ, रायबरेली, बाराबंकी, उन्नाव, प्रतापगढ़, फैजाबाद और सुल्तानपुर जिले शामिल हैं-मुख्य रूप से स्वदेशी जातियों के नियंत्रण में था। इनमें भर या राजभर जाति का स्थान सर्वोपरि था (क्रुक, 1896)। हर्षवर्धन के साम्राज्य के पतन के बाद और दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व, उत्तर भारत में कोई एक मजबूत केंद्रीय सत्ता नहीं थी। इसी शून्यता का लाभ उठाते हुए भरों ने अवध के घने जंगलों और उपजाऊ मैदानी इलाकों में अपने छोटे-छोटे गणराज्यों और रियासतों की स्थापना की।

भरों का प्रशासन सामंती नहीं था, बल्कि यह एक जनजातीय या कबीलाई और विकेन्द्रीकृत प्रणाली पर आधारित था। उन्होंने पूरे क्षेत्र में ईंटों के विशाल किलों कोट का निर्माण कराया, जिनके अवशेष आज भी भर-डीह या टीलों के रूप में देखे जा सकते हैं। लखनऊ और उसके आस-पास के क्षेत्रों में भरों का राजनीतिक प्रभाव इतना व्यापक था कि 14वीं शताब्दी तक आने वाले तुर्क और राजपूत आक्रांताओं को सबसे बड़ी चुनौती इन्हीं भर सरदारों से मिली।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य लखनऊ और उसके सीमावर्ती जिलों रायबरेली, बाराबंकी आदि में भर जाति के उद्भव, उनकी शासन प्रणाली, उनके द्वारा निर्मित दुर्गों और मंदिरों के पुरातात्विक साक्ष्यों, तथा उनके अंतिम पतन के कारणों का ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

2. शोध प्रविधि

यह शोध पत्र ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और विवरणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन को प्रामाणिक बनाने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

प्राथमिक स्रोत: ब्रिटिश काल के जिला गजेटियर जैसे लखनऊ गजेटियर, रायबरेली गजेटियर, बाराबंकी गजेटियर के अध्ययन के साथ ही वर्णित स्थानों का लेखक के द्वारा शोध कार्य के दौरान क्षेत्र सर्वेक्षण भी किया गया।

द्वितीयक स्रोत: मानवशास्त्रीय और ऐतिहासिक ग्रंथ जैसे विलियम क्रुक की द ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविंसेस एंड अवध, सी ए इलियट की द क्रॉनिकल्स ऑफ ऊनाओ, डब्ल्यू सी बेनेट की रिपोर्ट्स और ए कनिंघम के पुरातात्विक सर्वेक्षण। इन पाठ्य सामग्रियों के आलोचनात्मक विश्लेषण के माध्यम से भरों के ऐतिहासिक परिदृश्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है।

3. भर जाति की उत्पत्ति और सामाजिक पृष्ठभूमि

भर या राजभर जाति की उत्पत्ति के विषय में मानवशास्त्रियों और इतिहासकारों में मतभेद रहा है। कुछ विद्वान इन्हें कोल या द्रविड़ियन मूल का मानते हैं, जो आर्यों के आगमन से पूर्व इस क्षेत्र के मूल निवासी थे (शेरिंग, 1872)। वहीं कुछ अन्य इतिहासकार इन्हें सूर्यवंशी या चंद्रवंशी क्षत्रियों से जोड़कर देखते हैं, जिन्होंने समय के साथ और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पतन के कारण एक अलग पहचान बना ली। हाल के शोधों के अनुसार विद्वान भरों को नगवंशी भरशिवों के साथ जोड़ते हैं, जिन्होंने कुषाणों को उत्तर भारत से हराकर वाराणसी में दस अश्वमेध यज्ञ किए थे। भरशिवों को ही उत्तर भारत में शैव मत के प्रसार-प्रचार का श्रेय दिया जा सकता है।

अवध के संदर्भ में यह स्थापित तथ्य है कि भर इस क्षेत्र की सबसे पुरानी ज्ञात राजनीतिक शक्तियों में से एक थे। यह एक लड़ाकू जनजाति रही है, लगभग सभी ब्रिटिश लेखकों ने भरों को मार्शल ट्राइब/रेस के रूप में बताया है। लखनऊ के गजेटियर के अनुसार, लखनऊ और शेष अवध के दक्षिण-पूर्वी हिस्से में भरों का प्रभुत्व था। हालांकि, लखनऊ के कुछ पुराने गांव और नष्ट हो चुके किलों के अवशेषों जिन्हें अन्यत्र सर्वत्र भरों से जोड़ा जाता है, इनको स्थानीय लोककथाओं में पासी या अरख जातियों से भी जोड़ा गया है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये पासी और अरख जातियां स्वयं को भरों का ही निकट संबंधी या उनका वंशज मानती हैं।

इसी प्रकार, रायबरेली जिले के ऐतिहासिक संदर्भों में यह स्पष्ट रूप से उल्लेखित है कि स्थानीय परंपराओं के अनुसार अहीर और पासी जातियों को भरों का ही वंशज माना जाता है। जब बाद में राजपूतों का आक्रमण हुआ, तो इन जातियों ने जंगलों में शरण ली और बाद में वे कृषक या श्रमिक वर्ग में तब्दील हो गईं। इससे यह सिद्ध होता है कि भर एक वृहद कबीलाई महासंघ का नाम था, जिसमें समय के साथ कई अन्य स्थानीय जातियां जैसे पासी, अरख, अहीर या तो शामिल हो गईं या उनसे ही उत्पन्न हुईं। पूर्व में इन्हें राजभर भी कहा जाता था, जो इनके शासक वर्ग होने का प्रमाण है।

4. 9वीं से 14वीं शताब्दी के मध्य राजनीतिक स्थिति

9वीं शताब्दी में उत्तर भारत पर गुर्जर-प्रतिहारों का शासन था। कन्नौज उनकी राजधानी थी, जो लखनऊ से अधिक

दूर नहीं है। यद्यपि कन्नौज में एक विशाल साम्राज्य का केंद्र था, तथापि गोमती और घाघरा नदियों के मध्य का वन क्षेत्र अवध काफी हद तक स्थानीय कबीलाई सरदारों के ही अधीन रहा। प्रतिहारों और बाद में गहड़वालों के शासनकाल में, भर सरदारों ने नाममात्र की अधीनता स्वीकार की और अपने-अपने क्षेत्रों जिन्हें परगना या कोट कहा जाता था में वे पूर्णतया स्वतंत्र शासक की तरह व्यवहार करते थे।

11वीं शताब्दी के आरंभ लगभग 1030-1033 ई में भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमणों के दौरान, उसके भतीजे सैयद सालार मसूद ने अवध के इस क्षेत्र की ओर रुख किया। यह वह समय था जब भर राजनीतिक रूप से अत्यंत शक्तिशाली थे। बहराइच, बाराबंकी और लखनऊ के आस-पास के क्षेत्रों में सालार मसूद का कड़ा संघर्ष भर और पासी राजाओं से हुआ। सुहलदेव, जो कि श्रावस्ती बहराइच के एक प्रतापी भर राजा माने जाते हैं, ने भरों और अन्य स्थानीय जनजातियों का एक बड़ा संघ बनाकर तुर्क सेना को बुरी तरह पराजित किया और सालार मसूद का वध कर दिया (इलियट, 1862)। यह विजय भरों की सैन्य शक्ति और उनकी संगठनात्मक क्षमता का स्पष्ट प्रमाण थी। इस युद्ध के पश्चात् लगभग दो शताब्दियों तक दिल्ली के तुर्क सुल्तानों ने अवध के इन सघन वन क्षेत्रों में सीधा हस्तक्षेप करने का साहस नहीं किया।

5. लखनऊ और सीमावर्ती जिलों में भरों का प्रभाव

भरों का राजनीतिक और जनसांख्यिकीय प्रभाव अवध के विभिन्न जिलों में अलग-अलग स्वरूप में देखा जा सकता है।

अ. लखनऊ

वर्तमान लखनऊ शहर और इसके आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों पर भरों और उनके सहयोगी अरख व पासी सरदारों का सीधा नियंत्रण था। लखनऊ गजेटियर स्पष्ट करता है कि जिले के दक्षिण-पूर्वी हिस्से में भरों का एकछत्र राज था। काकोरी, मलीहाबाद और गोमती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में घने जंगल थे, जहां भरों ने अपनी बस्तियां बसाई थीं। काकोरी का पुराना किला भी मूल रूप से भरों द्वारा निर्मित माना जाता है, जिस पर बाद में मुस्लिम आक्रांताओं ने अधिकार कर लिया। मलीहाबाद परगना पारंपरिक रूप से अरख को सौंपा गया माना जाता है, जो भरों के ही एक अंग थे। लखनऊ के ग्रामीण क्षेत्रों में बिखरे हुए ऊंचे टीले आज भी भर डीह कहलाते हैं, जो किसी समय में भरों के भव्य कोट किले हुआ करते थे। काकोरी, निगोहाँ, सीसेंडी, मोहनलालगंज, मलीहाबाद, हुलास खेड़ा, भरवारा, बक्शी का तालाब, आदि स्थानों में भरों के टीले बहुतायत मिलते हैं । काकोरी की स्थापना भर सरदार **ककोर** ने की ऐसी मान्यता है । मुस्लिम आक्रमण के बाद काकोरी एवं मलीहाबाद क्षेत्र में भरों का इस्लामिकरण हुआ और यह **झोंझो (जोंझो)** मुस्लिम बने । लखनऊ की टीले वाली मस्जिद एवं वर्तमान के जी एम यू का क्षेत्र भी भरों के पुराने टीले पर बसा है जिसे लखन टीले के नाम से जाना जाता है।

आ. रायबरेली

रायबरेली जिले का नाम भरों के नाम "भरौली" (भरों का गढ़) पर ही पड़ा। रायबरेली में भरों का शासन अत्यंत सुव्यवस्थित था। रायबरेली गजेटियर के अनुसार, डलमऊ और सरेनी परगनों में भरों के सबसे मजबूत गढ़ थे। डलमऊ के पास गंगा नदी के तट पर स्थित प्राचीन खंडहर भर राजा डल और बल से जुड़े माने जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि राजा डल के नाम पर ही डलमऊ का नामकरण हुआ। जब जौनपुर के शर्की सुल्तानों और बैस राजपूतों का इस क्षेत्र में प्रवेश हुआ, तो भरों ने उनका कड़ा मुकाबला किया।

रायबरेली में बैस राजपूतों विशेषकर तिलकचंदी बैस का उदय भरों के पतन का सबसे बड़ा कारण बना। लोककथाओं के अनुसार, बैस राजपूतों ने भरों को शराब पिलाकर उनके किलों पर अधिकार किया। यह एक सामान्य किंवदंती है जो पूरे अवध में भरों और पासियों के किलों के पतन के विषय में सुनाई जाती है कि जब वे नशे में धुत थे, तब राजपूतों या मुगलों ने उन पर अचानक हमला कर दिया। इससे यह भी पता चलता है कि सीधे युद्ध में भरों को हराना अत्यंत कठिन था। सम्पूर्ण रायबेरली में भरों से जुड़े कई किले व कोट पाए जाते हैं

इ. बाराबंकी और फैजाबाद

बाराबंकी में भरों की सत्ता अत्यधिक सुदृढ़ थी। बाराबंकी गजेटियर में उल्लेख है कि यह जिला, विशेषकर इसका उत्तरी और मध्य भाग, भरों के अधीन था। रामनगर और दरियाबाद के क्षेत्रों में भरों के अनेक किलों के भग्नावशेष आज भी मौजूद हैं। बाराबंकी में भरों का पतन मुख्य रूप से रैकवार राजपूतों के आगमन के साथ हुआ, जिन्होंने 15वीं शताब्दी के आस-पास यहां अपनी सत्ता स्थापित की।

फैजाबाद प्राचीन अयोध्या क्षेत्र के कई परगनों में भी 14वीं शताब्दी तक भरों का शासन रहा। कहा जाता है कि प्राचीन अयोध्या के कई नष्ट हो चुके मंदिरों का जीर्णोद्धार या संरक्षण भर शासकों ने ही किया था। कुषाण और गुप्त काल के बाद जब बड़े साम्राज्य नष्ट हो गए, तो भरों ने ही अयोध्या और उसके आस-पास के तीर्थ स्थानों को वन आच्छादित होने से बचाया। फैजाबाद से सटे सुल्तानपुर, जिसे मध्यकाल तक कुशभवानपुर नाम से जाना जाता था, में नंदकुवंर नामक भर राजा को अलाउद्दीन के आदेश पर राजपूतों ने मार दिया। इस घटना से खुश होकर अलाउद्दीन ने इन्हे भाले सुल्तान की उपाधि दी व कुशभावनपुर का नाम सुल्तानपुर रख दिया।

6. पुरातात्विक साक्ष्य: किले, टीले, मंदिर और कोट

भरों की वास्तुकला मुख्य रूप से उनकी रक्षात्मक आवश्यकताओं पर आधारित थी। उनके निर्माण कार्यों के अवशेष पूरे अवध क्षेत्र में फैले हुए हैं।

अ. टीले और कोट

अवध के गांवों में पाए जाने वाले ऊंचे टीलों को स्थानीय बोलचाल में भर डीह कहा जाता है। ये टीले वास्तव में भरों के प्राचीन किलों कोट के भग्नावशेष डलमऊ का किला, रायबरेली का किला व बावड़ी, काकोरी का किला, सीसेंडी का किला, बिजली पासी का किला, राजा बारा का किला, मलीहाबाद का भरडीह, भरवारा टीला आदि प्रमुख किले एवं टीले भरों से जुड़े पाए गए हैं । भर कोट की विशेषताएं निम्नलिखित थीं:

- पक्की ईंटों का प्रयोग: यद्यपि यह धारणा है कि भर जंगली जातियां थीं, लेकिन उनके टीलों की खुदाई से चौड़ी और पक्की ईंटें जिन्हें प्रायः लखौरी ईंटों से भी पुराना माना जाता है प्राप्त हुई हैं।
- वनों से घिरे दुर्ग: तुर्कों की अश्वारोही सेना से बचने के लिए भर अपने किले घने जंगलों के बीच बनाते थे और किलों के चारों ओर बांस के घने जंगल लगा देते थे, जिन्हें पार करना किसी भी बाहरी सेना के लिए असंभव होता था।
- जल संरक्षण: हर कोट के पास एक या एक से अधिक विशाल तालाब पखर अवश्य होता था। अवध के कई पुराने तालाबों का निर्माण भरों द्वारा ही कराया गया माना जाता है।
- भर जाति के सभी किले, कोट, भरडीह या टीले प्रमुख नदियों के आसपास ही रहे हैं, इससे यह मत प्रबल रूप से सामने आता है की इन्होंने पूर्व मध्यकालीन से मध्यकालीन जल मार्ग से होने वाले व्यापार पर नियंत्रण स्थापित किया होगा।

आ. मंदिर और धार्मिक मान्यताएं

भर मूलतः शिव और शक्ति के उपासक थे। अवध के कई प्राचीन शिव मंदिरों की नींव भरों द्वारा रखी गई थी। जिन टीलों की खुदाई हुई है, वहां से प्रायः काले पत्थर के शिवलिंग और मातृ देवियों की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। वे नाग पूजा और प्रकृति पूजा भी करते थे। भरों के धार्मिक स्थलों को ब्राह्मणवादी व्यवस्था में भी स्वीकार कर लिया गया और उनके पतन के बाद राजपूतों ने उन्हीं प्राचीन देव-स्थलों पर अपने नए मंदिरों का निर्माण कराया। रायबरेली के मनसा माता मंदिर, आस्तिक मंदिर, डलमऊ का शिवाला नाग परंपरा से जुड़े भर शासन कालीन माने जाते हैं। लखनऊ का भर कालीन चंद्रिका देवी, मौरवाँ (उन्नाव) का वनदेवी मदनीर व इन स्थानों पर कई शिवाले आज भी मौजूद हैं।

7. भरों का पतनः राजपूतों और तुर्कों का आगमन

12वीं शताब्दी के अंत में तराइन के युद्ध 1192 ई में पृथ्वीराज चौहान की हार और 1194 ई में चंदावर के युद्ध में जयचंद की पराजय के बाद उत्तर भारत की भू-राजनीति हमेशा के लिए बदल गई। कन्नौज और दिल्ली के पतन के बाद कई राजपूत कबीले दोआब और राजस्थान से पलायन करके अवध के जंगलों की ओर आने लगे। इनमें बैस, कान्हपुरिया, रैकवार, गौतम और बिसेन प्रमुख थे।

अ. राजपूतों द्वारा विस्थापन

राजपूतों के पास बेहतर सैन्य संगठन, अश्वारोही सेना और आधुनिक अस्त्र-शस्त्र थे। इसके अतिरिक्त, उन्हें दिल्ली के सुल्तानों या जौनपुर के शर्की शासकों का भी परोक्ष समर्थन प्राप्त होता था, क्योंकि सुल्तान स्वयं भरों की विद्रोही प्रवृत्तियों से परेशान थे। रायबरेली के डलमऊ क्षेत्र में भर शासक राजा डल को जौनपुर के इब्राहिम शाह शर्की की सहायता से पराजित किया गया था (बेनेट, 1870)। रायबरेली और उन्नाव में बैस राजपूतों के संस्थापक त्रिलोक चंद ने भरों के कई किलों को नष्ट करके अपने साम्राज्य बैसवाड़ा की नींव रखी। कान्हपुरिया राजपूतों ने सलोन और प्रतापगढ़ के क्षेत्रों में भरों का कत्लेआम किया और अपनी रियासतें बसाईं।

आ. दिल्ली सल्तनत का दबाव

13वीं शताब्दी में इल्तुतमिश और बलबन के शासनकाल में अवध में मवास यानी विद्रोही वन-क्षेत्रों को कुचलने के लिए कई सैन्य अभियान चलाए गए। बलबन ने अवध के जंगलों को कटवा दिया और वहां सैनिक छावनियां थाना स्थापित कीं। इससे भरों के प्राकृतिक रक्षक जंगल नष्ट हो गए और वे सुल्तानों की शाही सेनाओं के सामने कमजोर पड़ने लगे।

इ. सामाजिक विलीनीकरण

राजपूतों और तुर्कों के दोहरे आक्रमणों ने 14वीं शताब्दी के अंत तक भरों की राजनीतिक शक्ति को पूर्णतः समाप्त कर दिया। जो भर बच गए, उनमें से कुछ ने इस्लाम स्वीकार कर लिया, कुछ राजपूतों के अधीन कृषि दास बन गए, और अन्य पासी, अहीर और अरख जैसी जातियों में विलीन हो गए। एक विचित्र बात यह सामने आई है की कई क्षेत्रीय राजपूत वंश भरों से ही अलग होकर बनें थे, जिनमें रायबरेली के राणा प्रमुख रूप से जाने जाते हैं (बेनेट, 1870) । यह जनसांख्यिकीय बदलाव इस बात का प्रमाण है कि भर पूरी तरह से विलुप्त नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपनी राजनीतिक पहचान खोकर एक नई सामाजिक-आर्थिक स्थिति को अपना लिया। ब्रिटिश शासन के दौरान इनके प्रबल विरोधी स्वभाव के कारण इन्हे जन्मजात अपराधी धोषित किया गया (क्रिमिनल ट्राइब ऐक्ट 1871)

8. निष्कर्ष

लखनऊ, रायबरेली, बाराबंकी और समग्र अवध के 9वीं से 14वीं शताब्दी के इतिहास का गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि भर राजभर जाति भारतीय इतिहास का वह विस्मृत अध्याय है जिसने उत्तर मध्यकाल के प्रारंभिक दौर में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने न केवल सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया बल्कि कृषि व्यवस्था, सिंचाई तालाबों का निर्माण और वास्तुकला पक्की ईंटों के कोट में भी अभूतपूर्व योगदान दिया। उनके द्वारा छोड़े गए पुरातात्विक टीले आज भी उनके वैभव की मूक गवाही देते हैं। दुर्भाग्यवश, इतिहास लेखन में उन्हें केवल एक बर्बर या जंगली जाति के रूप में चित्रित किया गया, जबकि वास्तविकता यह है कि उन्होंने उस कालखंड में एक मजबूत प्रतिरोधक शक्ति के रूप में कार्य किया, जब भारत पर विदेशी आक्रमण अपने चरम पर थे। राजपूतों और तुर्कों के राजनीतिक गठजोड़ और बेहतर सैन्य तकनीक के सामने अंततः वे हार गए। लेकिन लखनऊ और उसके सीमावर्ती जिलों की सांस्कृतिक और जनसांख्यिकीय नींव में भर जाति का रक्त और उनकी विरासत आज भी पासी, अहीर और अन्य स्थानीय जातियों के रूप में जीवित है। भर जाति का इतिहास केवल एक जाति का इतिहास नहीं है, बल्कि यह अवध के भूमिपुत्रों के संघर्ष, उत्थान और उनके सांस्कृतिक विलीनीकरण की एक महान गाथा है।

संदर्भ सूची

1. बिंग्ले, ए एच (1899) कास्ट हैंडबुक्स फॉर द इंडियन आर्मी राजपूत्स कलकत्ता सुपरिंटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग
2. बेनेट, डब्ल्यू सी (1870) ए रिपोर्ट ऑन द फैमिली हिस्ट्री ऑफ द चीफ क्लांस ऑफ द रॉय बेयरिली डिस्ट्रिक्ट लखनऊ
3. बटर, डी (1839) आउटलाइंस ऑफ द टोपोग्राफी एंड स्टैटिस्टिक्स ऑफ द सदर्न डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ अवध कलकत्ता
4. बट्स, एच एच (1873) रिपोर्ट ऑन द लैंड रेवेन्यू सेटलमेंट ऑफ द लखनऊ डिस्ट्रिक्ट लखनऊ
5. कार्नेगी, ए (1868) नोट्स ऑन द रेसेज ट्राइब्स एंड कास्ट्स इनहैबिटिंग द प्रोविंस ऑफ अवध लखनऊ
6. क्रुक, डब्ल्यू (1896) द ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविंसेस एंड अवध खंड द्वितीय कलकत्ता ऑफिस ऑफ द सुपरिंटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग
7. कनिंघम, ए (1871) आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट्स खंड 1 सिमला गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस
8. इलियट, सी ए (1862) द क्रॉनिकल्स ऑफ ऊनाओ ए डिस्ट्रिक्ट इन अवध इलाहाबाद इलाहाबाद मिशन प्रेस
9. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया प्रोविंशियल सीरीज युनाइटेड प्रोविंसेस ऑफ आगरा एंड अवध खंड 2 (1908) कलकत्ता सुपरिंटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग
10. इर्विन, एच सी (1880) द गार्डन ऑफ इंडिया ऑर चैप्टर्स ऑन अवध हिस्ट्री एंड अफेयर्स लंदन डब्ल्यू एच एलन एंड कंपनी
11. फ्रेमैंटल, एस एच (1898) रिपोर्ट ऑन द सेकंड सेटलमेंट ऑफ द राय बरेली डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद
12. मैकएंड्रू, जे एफ (1872) रिपोर्ट ऑफ द सेटलमेंट ऑपरेशंस ऑफ द राय बरेली डिस्ट्रिक्ट लखनऊ
13. मिलेट, ए एफ (1873) रिपोर्ट ऑन द सेटलमेंट ऑफ द लैंड रेवेन्यू ऑफ द सुल्तानपुर डिस्ट्रिक्ट लखनऊ
14. नेविल, एच आर (1904ए) बाराबंकी ए गजेटियर बीइंग वॉल्यूम एक्सएलवीआईआईआई ऑफ द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ द युनाइटेड प्रोविंसेस ऑफ आगरा एंड अवध इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस

15. नेविल, एच आर (1904बी) लखनऊ ए गजेटियर बीइंग वॉल्यूम थर्टी सेवन ऑफ द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ द युनाइटेड प्रोविंसेस ऑफ आगरा एंड अवध इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस
16. नेविल, एच आर (1905) राय बरेली ए गजेटियर बीइंग वॉल्यूम थर्टी नाइन ऑफ द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ द युनाइटेड प्रोविंसेस ऑफ आगरा एंड अवध इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस
17. शेरिंग, एम ए (1872) हिंदू ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऐज रिप्रेजेंटेड इन बनारस कलकत्ता थैकर स्पिंक एंड कंपनी
18. स्लीमन, डब्ल्यू एच (1858) ए जर्नी थ्रू द किंगडम ऑफ अवध इन 1849-1850 लंदन रिचर्ड बेंटली
19. स्मिथ, वी ए (1897) द एंटीक्विटीज ऑफ द बाराबंकी डिस्ट्रिक्ट जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
20. द भार ट्राइब (1864) जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
21. हूपर, जे (1898) फाइनल रिपोर्ट ऑन द सेटलमेंट ऑफ द लखनऊ डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद